प्रो० देवेन्द्रकुमार जैन
एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री, रायपुर

अपभ्रंश जैन-साहित्य

अपभ्रंश भाषा और साहित्य दोनों का अत्यन्त महत्त्व है. भाषा-विकास की दृष्टि से अपभ्रंश मध्य भारतीय आर्यभाषाओं की अंतिम अवस्था का नाम है. प्राकृत की अपेक्षा यह भाषा मधुर है. राजशेखर ने संस्कृत-बन्ध को कठोर कहा है और प्राकृत को सुकुमार, लेकिन विद्यापति देशवचन को 'सबजन-मिट्ठा' कहते हैं. अपभ्रंश देशी भाषा के अधिक निकट है.[1] महाकवि स्वयम्भू ने इसे ग्रामीण भाषा कहा है.[2] साधारणतः यह कहा जा सकता है कि मध्यभारतीय आर्यभाषाओं की मध्य भूमिका तथा नव्य भारतीय आर्यभाषाओं की आदिम भूमिका के मध्य का रूप अपभ्रंश है. मुख्य रूप से यह पश्चिमी भाषा है. राजशेखर ने भी इसका संकेत किया है. उसने लिखा है कि उत्तर के कवि संस्कृतप्रेमी हैं. मरुभूमि (मारवाड़) राजपूताना और—पंजाब के कवि अपभ्रंश में अधिक रुचि रखते हैं, अवन्ति, दशपुर और पारयात्र के कवि भूतभाषा-प्रेमी होते हैं. किन्तु मध्यदेश के कवि सभी भाषाओं में रुचि रखते हैं. यही नहीं, उसने इस बात पर भी बल दिया है कि संस्कृत, प्राकृत कवियों के बाद ही राजदरबार में अपभ्रंश कवियों को पश्चिम दिशा में स्थान दिया जाय[3]. भाषागत साम्य के आधार पर पंजाबी, सिंधी और जूनी राजस्थानी के सम्बन्ध में यह कथन ठीक माना जा सकता है.

प्राकृत में जैन और बौद्ध साहित्य ही प्रमुख है. अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य जैन साहित्य है. सन्देश-रासक तथा सिद्ध-साहित्य (बौद्ध चर्यापद, गीति और दोहा) को छोड़कर लगभग समूचा वाङ्मय जैन शाहित्य है. अपभ्रंश साहित्य हिंदी साहित्य से न्यून नहीं है. हिन्दीसाहित्य के आदि काल की अनेक रचनायें अपभ्रंश की गिनाई जाती हैं. केवल इतना ही नहीं, श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इसे 'पुरानी हिन्दी' नाम देते हैं. गुजराती इसे 'जूनी गुजराती' और राजस्थानी 'पुरानी राजस्थानी' कहकर पुकारते हैं. इससे भी अपभ्रंश की सामान्य आधार-भूमिका का पता लगता है. हिंदी के भक्ति और रीति काल के साहित्य से अपभ्रंश साहित्य अधिक विस्तृत है. साहित्यिक दृष्टि से भी इसका विशेष स्थान है. हिंदी साहित्य की अनेक प्रवृत्तियां अपभ्रंश-युग की देन हैं. छंदों की विविधता, रचना-शैली, परम्परागत काव्यात्मक वर्णन, साहित्यिक रूढ़ियों का निर्वाह, लौकिक और शास्त्रीय शैलियों का समन्वय, वस्तु विधान, प्रकृति-चित्रण, रसात्मकता, भक्ति और शृंगार का पुट आदि प्रवृत्तियां अपभ्रंश-साहित्य से ही परम्परागत रूप में हिंदी साहित्य को प्राप्त हुई हैं.[4] उपलब्ध अपभ्रंश जैन साहित्य में प्रबन्धकाव्यों की संख्या अधिक नहीं है. फिर भी हिंदी प्रबंधकाव्यों से अपभ्रंश प्रबन्धकाव्य

१. स्वयम्भू—पउमचरिउ प्रथम भाग, १, २.
२. स्वयम्भू—पउमचरिउ प्रथम भाग, १, ३.
३. देखिए, काव्यमीमांसा दशम अध्याय.
४. देखिये 'मेरा लेख सन्देशरासक और हिन्दी काव्यधारा' सप्तसिन्धु अप्रैल ६० का अंक.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यिक रचना-विधान में उत्कृष्ट और परिमाण में अधिक हैं. अपभ्रंश के प्रकाशित जैन प्रबन्धकाव्य इस प्रकार हैं—पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, महापुराण, णायकुमारचरिउ, जसहर चरिउ, भविसयत्तकहा, करकंडुचरिउ, णेमिणाहचरिउ, पउमसिरीचरिउ, सनत्कुमार-चरित और सुदंसणचरिउ आदि. कुछ अप्रकाशित प्रबन्धकाव्यों के नाम ये हैं—हरिवंश-पुराण, पांडुपुराण, पद्मपुराण, सुकोशल चरिउ, मेघेश्वरचरिउ आदि. इनमें से पुराणकाव्य और चरितकाव्य शुद्ध धार्मिक काव्य ग्रंथ हैं और णायकुमार-चरिउ, करकंडुचरिउ, और पउमसिरीचरिउ मुख्यतः रोमांटिक काव्य हैं. इनके अतिरिक्त मुक्तक काव्यों में रास, चर्चरी, कुलक, फागु, दोहा और गीति रचनायें हैं. उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य में गद्य और दृश्य-काव्य नहीं के बराबर हैं. लोकगीत अवश्य उस समय प्रचलित थे, जिनका आधार लोकप्रसिद्ध कथा होती थी. महाराष्ट्र में इसका प्रचलन अधिक व्यापक था. खंडकाव्य के नाम पर केवल 'संदेशरासक' प्राप्त हो सका है. परन्तु अभी अपभ्रंश का विपुल साहित्य प्रकाशन की प्रतीक्षा में है. महाकवि स्वयम्भू तथा पुष्पदन्त के उल्लेखों से यही पता चलता है कि अपभ्रंश साहित्य सातवीं सदी से प्राचीन है. लगभग एक हजार वर्षों तक यह साहित्य भारत-भूमि पर पल्लवित-पुष्पित होता रहा. भाषा ही नहीं, साहित्य में भी यह प्राकृत साहित्य से मेल खाता है. अभी तक समूचे प्राकृत साहित्य का आलोडन नहीं हो सका. इसका कारण संस्कृत को अधिक बढ़ावा देना है. किंतु संस्कृत में प्रभाव रूप से कई बातें प्राकृत और अपभ्रंश की मिलती हैं. संस्कृत के कई छन्द प्राकृतछंद हैं और अंत्यानुप्रास की प्रवृत्ति अपभ्रंश साहित्य की देन है. वस्तु-विवरण पद्धति भी दोनों में समान है. हिंदी में बारहमासा की प्रवृत्ति, छंद-विधान, अंत्यानुप्रास, अलंकार-योजना, प्रबन्ध-शिल्प, पद्धति-चित्रण आदि विधायें अपभ्रंश की देन हैं, न कि संस्कृत की.

प्रो० हर्टर ने जैन कथासाहित्य के निम्न लिखित रूप निर्धारित किये हैं.

१. धार्मिक आलोचना में कहानियां
२. धार्मिक आख्यान
३. चरित-काव्य
४. पौराणिक कहानियां [राम, कृष्ण आदि]
५. प्रबंध कहानियां [साधु, साध्वियों का जीवन-चरित]
६. कथा-काव्य

वस्तुतः चरित-काव्य और कथा-काव्य में मौलिक भेद नहीं है. चरित-काव्य और पौराणिक काव्य में अवश्य थोड़ा भेद है. अपभ्रंश चरितकाव्यों के अन्तर्गत पउमचरिउ, णायकुमारचरिउ, पउमसिरीचरिउ, जसहरचरिउ करकंडुचरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ और भविसयत्तकहा आदि की गणना की जाती है. चरितकाव्यों की परम्परा अत्यधिक प्राचीन ज्ञात होती है. आगे चलकर इसी परम्परा में रामचरितमानस, रामचंद्रिका, पद्मावत प्रबन्धकाव्य रचे गये. संस्कृत में अवश्य पुराण-काव्यों की सर्वाधिक प्राचीनता का पता लगता है. सम्भव है कि चरित काव्य की धारा के मूल रूपों का विकास पुराणों से हुआ हो. पुराणकाव्यों में अलौकिकता और विस्तार के साथ ही अवान्तर आख्यानों का बाहुल्य प्राप्त होता है. इसके विपरीत चरित काव्यों में लौकिकता, मुख्य कथाप्रेरक घटनायें और वस्तुसंयोजना संक्षिप्त होती है. पुराण काव्यों की भांति इनमें पौराणिक रूढ़ियों और धार्मिक तत्त्वों का उल्लेख भी कम होता है. रोमांटिक चरितकाव्यों में तो यह तत्त्व बहुत ही कम पाया जाता है. किसी-किसी काव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक व्यक्ति से भी सम्बन्ध रखती है. 'जायसी का पद्मावत' इसी प्रकार का काव्य माना जा सकता है.

पउमचरिउ—अपभ्रंश के आद्य महाकवि स्वयम्भू का यह प्रसिद्ध काव्य है. जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह एक चरित-काव्य है. इसमें पांच काण्ड और ९० संधियां हैं. प्रत्येक संधि में १२ से लेकर १४ तक कडवक हैं. इस रचना का समय आठवीं सदी का मध्य भाग माना जाता है. इसकी भाषा मधुर, प्रवाहपूर्ण और ललित है. भाषा पर कवि का जैसा अधिकार है, अन्यत्र विरल है. इस ग्रंथ में रामायण की कथा वर्णित है. प्राकृत में इनके पूर्व विमलसूरि 'पउमचरिउ' काव्य लिख चुके थे. संस्कृत में जिनसेन आचार्य ने भी 'आदिपुराण' की रचना कुछ समय पूर्व ही की थी. इन्हीं को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार मानकर यह चरितकाव्य रचा गया. इसके वर्णन, संवाद, दौत्यकर्म, प्रेमोद्रेक, युद्धवर्णन, प्रकृति-चित्रण, रस-संयोजना, अलंकार-योजना आदि में उत्कृष्ट काव्य के तत्त्व विद्यमान हैं. चौदहवीं संधि में चित्रित जलक्रीड़ा और वसन्त वर्णन काव्य की अनूठी सम्पत्ति है. संधि के अंत में लिखा भी है—जल-क्रीड़ा में स्वयम्भू को, गोग्रह-कथा में चतुर्मुख को और मत्स्य-वेधन में 'भद्र' को आज भी कवि लोग नहीं पा सकते. महाकवि स्वयम्भू के पुत्र त्रिभुवन का यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है. समूचा वर्णन पढ़ कर चित्त खिल जाता है. कहा जाता है कि 'पउमचरिउ' की नब्बे संधियों में से अंतिम आठ त्रिभुवन की रचना की हैं. परन्तु पुलिन्दभट्ट की भांति उनकी रचना से काव्य-ग्रंथ में कोई भेद नहीं लक्षित होता.

रिट्ठणेमिचरिउ—यह भी स्वयम्भू की रचना है. इसमें ११२ संधियाँ है. इस ग्रंथ का प्रमाण १८००० श्लोक कहा जाता है. इसमें बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि या नेमिनाथ का चरित तथा जैन-परम्परानुसार कृष्ण और पाण्डवों की कथा वर्णित है. प्रसिद्ध है कि इस काव्य की निन्यानवे संधि के बाद का अंश स्वयम्भू के पुत्र त्रिभुवन की रचना है. इसी विषय को लेकर गोविन्द, भद्र और चतुर्मुख के अपभ्रंश महाकाव्य प्रणयन का उल्लेख मिलता है. इन सभी रचनाओं का संबंध हरिवंशपुराण से है. जैन शास्त्रों में पद्मपुराण और 'हरिवंशपुराण' अत्यन्त ख्यातवृत्त हैं, जिनमें क्रमशः रामायण और महाभारत की मिलती-जुलती कथा प्राप्त होती है. हरिवंशपुराण का विषय लेकर लिखी जाने वाली रचनाओं में यशःकीर्ति का ३४ संधियों का पौराणिक काव्य पाण्डुपुराण का उल्लेख मिलता है. इसका रचना-काल १५२३ ई० कहा गया है.[1] हरिवंशपुराण के आधार पर रची गई रचनायें अधिक हैं. धवल कवि का 'हरिवंशपुराण' ११२ सन्धियों का काव्य है, जिसका रचना-काल ग्यारहवीं सदी के पूर्व माना जाता है. रइधू (सिंहसेन) का 'णेमिणाह चरिउ' १६ वीं शताब्दी के लगभग की रचना है. इसी प्रकार श्रुतकीर्ति का 'हरिवंश पुराण' १५५१ ई० का कहा गया है. लक्ष्मणदेव का 'णेमिणाह चरिउ' (संवत् १५१० से पूर्व) चार संधियों का है.[2] हरिभद्र के 'णेमिणाह चरिउ' का भी उल्लेख प्राप्त होता है. इसी प्रकार अमरकीर्तिगणि के 'णेमिणाह चरिउ' का पता लगा है. यशःकीर्ति के हरिवंशपुराण का पता लगता है जो १५ वीं सदी की रचना है. इस परंपरा में अभी अन्य रचनाओं का पता लगाना शेष है. क्योंकि भारतीय परम्परा में रामायण और महाभारत की कथायें अत्यन्त लोकप्रिय तथा विविध रूपों में वर्णित हैं.

'पद्मपुराण' को आधार बनाकर लिखी जाने वाली रचनाओं में केवल रइधू के 'पद्मपुराण' का उल्लेख मिलता है.

णायकुमारचरिउ—अपभ्रंश के दूसरे महाकवि पुष्पदन्त हैं. उनका णायकुमारचरिउ एक रोमांटिक कथाकाव्य है. इसमें नागकुमार के जीवनचरित्र का वर्णन है. इसमें वर्णित घटनायें अतिरंजित और प्रेमोद्रेकपूर्ण हैं. कथा का प्रारम्भ स्वाभाविक विधि से हुआ है. भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है. पढ़ते ही रस-धारा बहने लगती है. रोमांटिक कथाकाव्य का यह उत्कृष्ट निदर्शन है. इसकी रचना संवत् १०२५ के लगभग कही जाती है.

जसहरचरिउ—यह रचना भी पुष्पदन्त की है. इसे धार्मिक कथाकाव्य कहा जा सकता है. वस्तु-संयोजना में कसावट है. कथानक का विकास नाटकीय ढंग से होता है- समूचा कथानक धार्मिक, दार्शनिक उद्देश्यों से भरपूर है. आध्यात्मिक संकेत मिलने पर भी—रोमांटिक प्रवृत्ति जागरूक है. शैली उत्तम पुरुष में होने के कारण रचना में आत्मीय भाव अधिक है. प्रायः प्रबंधकाव्य की सभी साहित्यिक रूढ़ियाँ इस कथाकाव्य में दृष्टिगोचर होती हैं. कवि ने अपनी रचना को धर्मकथानिबन्ध कहा है. कुल मिलाकर यह कथाकाव्य सुन्दर है.

महापुराण—महाकवि पुष्पदन्त की यह तीसरी तथा सर्वोत्कृष्ट रचना है. इस बृहत्काय ग्रंथ में ६३ महापुरुषों के जीवन-चरित्र का वर्णन है. इसका रचनाकाल सं० १०१६—१०२२ है. इस महापुराण में १०२ सन्धियाँ हैं. इसका प्रमाण

---

१. देखिए—'भारती' पत्रिका अक्टूबर २७, १९५७ में डा० हरिवल्लभ भायाणी का लेख 'स्वयम्भूदेव', पृ० ६२.

२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अंक ३-४, सं० २००२, डा० हीरालाल जैन का लेख 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य' पृ० ११९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३००० श्लोक कहा जाता है. इसकी कुछ सन्धियों में २९ कडवक हैं. जैन शास्त्रों में त्रेसठ शलाकापुरुषों का जीवन-चरित्र लिखने की एक परम्परा ही है. शीलाचार्य का महापुरुषचरित प्राकृत भाषा में निबद्ध है. इस महापुराण का आधार आचार्य जिनसेन (सं० ७८३ के लगभग) कृत आदिपुराण है. इसी परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र विरचित त्रिषष्ठिशलाकापुरुष-चरित्र प्राप्त होता है.

साहित्यिक दृष्टि से महापुराण का अत्यन्त महत्त्व है. इसमें स्थान-स्थान पर कवित्वपूर्ण वर्णन, मधुर संवाद और गीतों की सुकोमल लड़ियां व्याप्त दिखाई देती हैं. महाकवि ने इन गीतों को 'धवलगीत' की संज्ञा दी है. अपभ्रंश साहित्य में इस कोटि का अन्य कोई ग्रंथ नहीं है. भाषा पूर्ण साहित्यिक है. स्वयम्भू की भाषा से पुष्पदन्त की भाषा अधिक परिमार्जित, सुष्ठु और प्रौढ़ है. भाषा-साहित्य की दृष्टि से भी यह अधिक मूल्यवान् है. इसके वर्णन इतने सुन्दर हैं कि पढ़ते ही मुग्ध हो आते हैं. उपमाओं की तो कवि ऐसी झड़ी लगा देता है कि एक से एक अधिक सुन्दर और सटीक प्रतीत होती है, भाषा की स्वाभाविकता और—निसर्गसिद्ध वर्णन अनुपमेय हैं. कहीं-कहीं उच्च कोटि के साहित्यिक गीत भी दृष्टिगत होते हैं. वर्णन अत्यन्त सुन्दर, सजीव और सटीक है.

भविसयत्तकहा—प्रसिद्ध कवि धनपाल की यह एक मात्र रचना है. इसका समय दसवीं शताब्दी कहा जाता है. इसके दूसरे नाम भविसयतकहा या सुयपंचमीकहा (श्रुतपंचमीकथा) हैं. इसमें कार्तिक शुक्ला पंचमी (ज्ञानपंचमी) के फल-वर्णन स्वरूप भविष्यदत्त की कथा का वर्णन है.

आधुनिक युग में संस्कृत प्राकृत व्याकरण के अध्ययन, मनन तथा अनुसंधान के समय डा० पिशेल को (१८८६ के लगभग) पता लगा कि अपभ्रंश भाषा का भी कोई व्याकरण है. उन्होंने अपभ्रंश के व्याकरण का अध्ययन कर 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन' का भी सम्पादन किया. परन्तु साहित्य का पता लगाने पर भी जब उन्हें कुछ प्राप्त नहीं हुआ तब अपभ्रंश के सम्बन्ध में उनकी यह मान्यता बन गई कि इस भाषा का सम्बन्ध लोक-जीवन से नहीं रहा, यह रूढ़ साहित्यिक भाषा मात्र थी. परन्तु १९१४ ई० मार्च में जर्मन विद्वान् प्रो० हरमन जेकोबी (Jacobi of Bonn Germany) ने भारत-यात्रा की और भ्रमणकाल में अहमदाबाद में किसी वैश्य के पास उक्त रचना प्राप्त कर हर्ष से पुलकित हो उठे. स्वदेश लौटकर उन्होंने बड़े मनोयोग पूर्वक उसका संपादन किया और अपभ्रंश भाषा की महत्ता प्रदर्शित की. इसका महत्त्व है कि यह अपभ्रंश का प्रथम प्रकाशित बृहत्काय ग्रंथ है. इसमें बाईस सन्धियां हैं. डॉ० जेकोबी ने हरिभद्र के नेमिनाथचरित से भविसयतकहा की भाषा की तुलना की है. धनपाल की भाषा में देशीपन और लचक है. कवि ने इस कथा को 'बिहि खंडहिं बावीसहिं सन्धिहि' (पृ० १४८) कहकर दो भागों में विभक्त कही है. परन्तु डा० हर्मन जेकोबी इसे तीन भागों में मानते हैं, जो उचित ही है.

अपभ्रंश कथा-काव्यों में भविसयत्तकहा का विशिष्ट स्थान है. इसमें वर्णित भविष्यदत्त की कहानी करुण और यथार्थ है. घटनाओं और पात्रों का चित्रण सहृदयता के साथ किया गया है. घटनाओं में कार्य-कारण की संयोजना पूरी तरह से मिलती है. अवान्तर कथा में भी संतुलन है. अवान्तर कथा मुख्यकथा को गतिशील बनाने में सहायक है. इसके साथ ही घटनायें स्वाभाविक और प्रेमानुभूति से अतिरंजित हैं. स्थान-स्थान पर उनका सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होता है. समूचे रूप में कथा स्वाभाविक और संवेदनीय है. अनुभूतियों की गहनता पूरी रचना में व्याप्त है. वह मार्मिक भी है. इसीलिए रसात्मकता से ओतप्रोत और स्पृहणीय है.

पउमसिरीचरिउ :—दिव्यदृष्टि कवि धाहिल की यह चार संधियों की अकेली रचना उपलब्ध है. इस चरितकाव्य का रचनाकाल ११ वीं सदी का मध्यभाग कहा जा सकता है. इसमें पद्मश्री का जीवन-चरित वर्णित है. इसकी कथावस्तु का आधार पारिवारिक घटनाएँ हैं. दो अलौकिक घटनाओं और अवान्तर कथाओं से इसकी वस्तु-योजना बनी है. फिर भी कथावस्तु स्वाभाविक है. इस पर सामाजिक स्थिति की पूरी छाप है. जीवन की व्यावहारिकता मानो इस काव्य में सजीव हो उठी है. रचना का उद्देश्य कथा के माध्यम से धर्म की ओर प्रेरित करना है.

करकंडुचरिउ :—मुनि कनकामर की यह प्रसिद्ध रचना है. मुख्य रूप से यह रोमांटिक चरितकाव्य है. इसमें दस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संधियों में राजा करकंडु की कथा है. यह जैन साहित्य की प्रसिद्ध कथा कही जाती है. इसमें धर्म और प्रेम साथ ही दृष्टिगोचर होता है. युद्ध का वर्णन भी है, पर वह नाम मात्र का है. वर्णन की अपेक्षा कथाओं की योजना स्वाभाविक है. इस काव्य में इतिवृत्तात्मकता के साथ संग्रहात्मकता भी है. परन्तु इतिवृत्तात्मकता का निर्वाह पूर्णरूप से नहीं हो पाया. श्रोता-वक्ता शैली को छोड़कर पौराणिक काव्य की शेष रूढियों का पालन हुआ है. आगे चलकर मूलकथा की गति में अवरोध दिखाई देता है. इसके संवाद अवश्य उत्तम हैं. इस पर कुछ नाटकीय प्रभाव भी लक्षित होता है.

जम्बूस्वामीचरिउ :—वीर कवि की यह कृति वि० सं० १०७६ की कही जाती है. इस चरितकाव्य में अंतिम केवली जम्बू स्वामी के चरित का वर्णन है. इसका उल्लेख डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपने प्रबन्ध 'अपभ्रंश साहित्य' में किया है. ऐसे अन्य भी अप्रकाशित चरित-काव्य हैं.

सुदंसणचरिउ:—यह नयनन्दी कविकृत चरितकाव्य है. इसका रचनाकाल वि० सं० ११०० कहा गया है. इसमें सुदर्शन के चरित के माध्यम से पंचनमस्कार मंत्र का माहात्म्य वर्णित है.

पासचरिउ :—यह पद्मकीर्ति की सफल कृति है. इसका उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है. इसमें तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवनचरित कहा गया है. काव्यका रचना-काल वि० संवत् ११३४ बताया जाता है. बारहवीं शताब्दी के अनेक चरित-काव्यों का उल्लेख मिलता है. उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—देवसेनगणि का सुलोयणाचरिउ. इसमें भरत चक्रवर्ती के प्रधान सेनापति जयकुमार की धर्मपत्नी का जीवन-चरित वर्णित है. श्रीधर के पासणाहचरिउ, सुकुमाल चरिउ और भविसयतचरिउ का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनमें क्रमशः पार्श्वनाथ चरित, सुकुमाल का पूर्व जन्म और श्रुतपंचमी का माहात्म्य वर्णित है.

तेरहवीं सदी के चरितकाव्यों में सिंह कवि का पज्जुण्णचरिउ है जिसमें प्रद्युम्न का जीवन-चरित चित्रित है. हरिभद्र का सनत्कुमारचरित और रइधू के सुकौशलचरित, मेघेश्वरचरित, श्रीपालचरित, सन्मतिनाथचरित हैं और हरिदेव का मयणपराजयचरिउ चरितकाव्यों में गिने जाते हैं. इस काल में रचित काव्यों की एक लम्बी परंपरा ही दिखाई देती है. आगे चलकर पंद्रहवीं सदी में धनपाल के बाहुबलिचरित और लखनदेव के णेमिणाहचरिउ का उल्लेख मिलता है.

इस प्रकार अपभ्रंश जैन साहित्य में चरितकाव्यों की विशिष्ट परंपरा है. पुराणकाव्यों की संख्या भी कम नहीं है. स्थूल रूप से दोनों में स्वरूप और लक्ष्य की दृष्टि का ही भेद है, मुक्तक काव्य में भी यही बात है. मुक्तक रचनाकारों में जोइन्दु (योगीन्द्र) का स्थान श्रेष्ठ माना जाता है. इसकी चार रचनायें हैं—परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहाप्राभृत और श्रावक-धर्म-दोहा. कवि का समय दसवीं शताब्दी माना गया है. इसके अतिरिक्त जिनदत्त सूरि की चर्चरी, कालस्वरूप कुलक, और उपदेशरसायन प्रसिद्ध रचनायें हैं. इनका समय बारहवीं सदी कहा जाता है. शालिभद्रसूरि का 'भारत बाहुबली रास' तेरहवीं सदी के रासक ग्रंथों में सबसे बड़ी रचना कही गई है. इसमें भरत-बाहुबली के युद्ध का विस्तृत वर्णन है. रचना अनेक बंधों में लिखी गई है. परवर्ती रासग्रंथों में इसी तरह के 'समरारास' 'कच्छुलीरास' पेथडरास आदि रचनायें लिखी गई. फागु ग्रंथ भी रचे गये. श्री जिनपद्म सूरिका 'सिरि थूलिभद्द फागु' प्रसिद्ध रचना है. इसके वर्णन अत्यन्त मनोहर हैं. शब्द-विन्यास बहुत ही उत्तम है. दोहों में आचार्य हेमचन्द्र के 'सिद्ध हेमशब्दानुशासन' में शृंगार, वीर, नीति, अन्योक्ति तथा अन्य प्रकीर्णक दोहे भी उपलब्ध होते हैं. छंदों के परिचय के लिए स्वयम्भू का 'स्वयम्भूछंद' प्रसिद्ध रचना है.

संक्षेप में—अपभ्रंश जैन साहित्य विपुल और विशद है. इसमें महाकाव्य, पुराण, चरितकाव्य, कथाकाव्य, गीत, उपदेश, शृंगार सभी कुछ प्राप्त होता है. गद्य अवश्य नहीं के बराबर है. ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय साहित्य और भाषा के मूल्यांकन के लिए यह साहित्य पूरक है. इस साहित्य के बिना समूचा ऐतिहासिक मूल्यांकन अपूर्ण ही रहेगा. इस साहित्य में भारतीय जीवन का पूरा चित्र अपनी स्वाभाविक दशा में प्रतिबिम्बित हुआ है. इसलिए इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है. आशा है कि भविष्य में अन्य शोध-कार्यों से इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकेगी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org